(देश देशान्तरों में प्रचारित, उच्च कोटि का अध्यात्मिक मासिक-पत्र)

वार्षिक मूल्य २)

एक प्रति का ≡

सन्देश नहीं मैं। स्वर्ग लोक का लाई।
इस भूतल को ही स्वर्ग बनाने आई॥

सम्पादक—
श्रीराम शर्मा आचार्य

इस अंक के सम्पादक—
प्रोफेसर रामचरण महेन्द्र

वर्ष ७ | मथुरा, १ फरवरी सन् १९४६ ई० | अंक

अपने चिकित्सक स्वयं बनिये—

अपने आपको सुधारना या बिगाड़ना तुम्हारे ही हाथ में है। तुम्हें रोग और व्याधि, शुभ या अशुभ फल अपने कर्मों के ही कारण मिलता है। यदि तुम दास बनना चाहोगे, तो दास बने रहोगे। यदि तुम अपने आपको स्वामी बनाओगे, तो स्वामी बन जाओगे।

अपने मनोविकारों को रोको। अन्तःकरण के भाव किस प्रकार के हैं, इसका पूरा पूरा ध्यान रक्खो। बुरे विचार, घातक चिंता तथा उपद्रवो शोकजनक दुर्भावनाओं को समूल नाश करदो। अन्तःकरण में उत्साही, प्रसन्न एवं स्फूर्तिदायक विचारों का तथा दिव्य भावनाओं का संचार कर दो। संसार के असाध्य रोगों का उपचार सद्विचार ही हैं। परमात्मा का विचार ही सब व्याधियों को दूर करने वाला है। लोग तुम्हारे साथ कैसा व्यवहार करते हैं, यह जानने की आवश्यकता नहीं। तुम सद्विचार करो, परमात्मा में अटल श्रद्धा और विश्वास रक्खो। इससे तुम्हें ज्ञात होगा कि व्याधियों का तुमसे जो सम्बन्ध था वह न्यून होता चला जा रहा है। ज्यों ज्यों तुम्हारे सद्विचारों का बल बढ़ता जायगा, त्यों त्यों व्याधियां स्वयं निर्मूल होती जायगी।

विश्वास-चिकित्सा या फेथक्योर।

मन का शरीर पर अद्भुत प्रभाव विश्वास चिकित्सा से स्पष्ट हो जाता है। मनुष्य विश्वास (Faith) का दास है। किसी तथ्य के निर्धारण में मन की तीन वृत्तियां कार्यशील होती हैं-विश्वास, संदेह, तथा अविश्वास। मन सर्व प्रथम निर्धारित करने लगता है और जब बहुत से वैसे ही उदाहरण पाता है, तब उस बात को सत्य मानने लगता है। मन की इस स्थिर विचार क्रिया को विश्वास कहते हैं। पूर्ण निर्धारण के उपरान्त मन में एक ऐसा स्थायी पथ या लकीर बन जाती है जैसी ग्रामोफोन के रिकार्ड पर। कभी कभी बाल्यावस्था के विश्वास बड़े होने के पश्चात् भी नहीं छुटते। एक बार विश्वास जम जाने के बाद मन उस विश्वास के विरुद्ध कोई भी तर्क (Reasoning) स्वीकार नहीं करता।

क्या कारण है कि साधुओं की धूनी की राख से लाभ हो जाता है? क्या कारण है कि केवल अध्यापक द्वारा बतलाई हुई बात ही विद्यार्थी के ध्यान में बैठती है? क्या बात है कि माता के पास ही आकर शिशु चुपचाप खेलता है? क्या कारण है कि झाड़फूंक, जादू टोना, नजर उतारना, गंडा, ताबीज, दाँत कीलना मेस्मेरेज्म हिप्नोटिज्म, संकेत इत्यादि से अद्भुत लाभ होता है? यह सब कुछ उन वस्तुओं पर आदि काल से जमा हुआ विश्वास ही है। इनमें गुणकारी सिर्फ मनुष्य का अपना विश्वास ही है। ये सभी बातें मनुष्य के मन में अतुलित विश्वास उत्पन्न कर गुणकारी संकेत (Suggestions) लोगों को देती हैं। आन्तरिक सामर्थ्य, उत्तेजित हो उठती है और स्वयं अपने ही आन्तर्निहित रोग निवारक सामर्थ्य से मनुष्य स्वस्थ हो उठता है।

कितने ही व्यक्तियों को यह विश्वास हो जाता है कि तम्बाकू भांग इत्यादि से पेट दर्द दूर होता है या चाय से ताकत आती है। कुछ दिनों के सेवन के पश्चात् न जाने कैसे वास्तव में ऐसा ही होने भी लगता है। उन्हें स्वास्थ्य विनाशनी इन मादक वस्तुओं से ही लाभ दीखने लगता है। इसका कारण हमारा स्वयं का संकेत (Suggestion) ही है और कुछ नहीं।

कितनी ही बीमारियों में किन्हीं विशेष डाक्टरों वैद्यों, चिकित्सकों या किन्हीं विशेष औषधियों में विश्वास जम जाता है और उन्हीं से लाभ होता है। अन्य कोई प्रसिद्ध डाक्टर दवाई करे तो कुछ फायदा नहीं होता। किसी विशेष पुरुष के रोगी के पास आने मात्र से रोग दूर होता है। महापुरुष ईसा महान् के व्यक्तित्व की शक्ति तरंगें अनेक रोगियों को भला चङ्गा कर देती थीं। कितने ही आध्यात्मवेत्ता, गणितज्ञ, कठिन प्रश्नों में इतने तन्मय हो जाते हैं कि ऑपरेशन तक करा लेते हैं यह उनका विश्वास ही है। मुहर्रमों के दिनों में ढोल पीटने वाले भावावेश में शरीर की परवाह तक नहीं करते। बड़े वक्ताओं की वाणी का प्रभाव उनके प्रति जमे हुए विश्वास का ही फल है।

विश्वास का सम्बन्ध मानव मन की अचेतन तरङ्गों से है। इन अचेतन तरङ्गों का प्रभाव आन्तरिक सामर्थ्य पर पड़ता है और मनुष्य का अपना ही संकेत उसे प्रत्येक दिशा में लाभ भी पहुंचाता है। अतः संकेतों द्वारा चिकित्सक को रोगी का अपना विश्वास ही उत्तेजित करना चाहिए। मनुष्य का अपना विश्वास-केवल अपने विषय में उत्तमता, उत्कृष्टता, स्वास्थ्य, आनन्द, में विश्वास ही मनुष्य को लाभ पहुंचाता है। बाह्य उपकरण तो आत्म-श्रद्धा के क्षुद्र प्रतीक हैं। ये तो केवल नाममात्र को ही प्रस्तुत रहते हैं। जीता जागता विश्वास ही सब कुछ है। यही महौषधि है।

———

मथुरा, १ फरवरी सन् १६४६

रोग तथा व्याधि का मनोवैज्ञानिक पहलू।

मनुष्य का मन जगत् नियन्ता का एक अद्भुत आश्चर्य है, वही समस्त जड़ चेतन का कारण भूत है तथा मानव जीवन के समग्र पहलू प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से उसी एक केन्द्र के इर्द गिर्द चक्कर लगा रहे हैं। मनुष्य का अस्तित्व मानसिक संघर्ष से हुआ है, उसके विचारों ने उसका पंचभौतिक शरीर विनिर्मित किया है। अपनी मानसिक अवस्था [illegible] ण प्रत्येक व्यक्ति अपनी बेड़ियां दृढ़ करता, तथा अज्ञान तिमिर में आच्छन्न हो ठोकरें खाता फिरता है।

अन्तःकरण से निर्माण—

जब मन महत्ता तथा विजय प्राप्त करने के निमित्त अग्रसर होता है, जब आन्तरिक उद्बोधन होता है, तब ही विश्व की समस्त शक्तियां उसे उन्नत होने के लिए चारों दिशाओं से सहायक होती हैं। अन्तःकरण से हमारी बाह्य अवस्थाओं का निर्माण प्रारम्भ होता है। संसार के अनेक अस्थिर मन वाले व्यक्ति दुर्बल अन्तःकरण एवं अशुद्ध अन्तरङ्ग के कारण ही रोग तथा व्याधि का भार वहन करते हैं। जितनी ही मानसिक शक्ति मनुष्य कषायों तथा कुवासनाओं के पोषण करने में विनष्ट करता है, उतनी ही शक्ति का यदि सदुपयोग किया जाय तो वह पूर्ण स्वस्थ एवं अक्षय यौवन के अमृतोपम सुख लूट सकता है। सर्व प्रकार की व्याधियां मन की बुरी भावनाओं से ही उद्भूत होती हैं। इसके विपरीत जहां शुद्ध भावना का अक्षय राज्य है, वहां शान्ति निवास करती है! मानसिक शान्ति का नाम सुख तथा अशान्ति ही दुःख है।

मन तथा शरीर का सम्बन्ध—

मन का शरीर पर अटूट अविच्छिन्न एवं अकाट्य प्रभाव है और यह सब काल, सब स्थितियों तथा समस्त अवस्थाओं में समान रूप से रहता है। मानसिक जर्जरता, मानसिक अशान्ति, उद्वेग, आवेश, विकार, मन में उद्भूत अनिष्ट कल्पना, चिंतन की अकल्याणकारी मूर्ति, ईर्षा, द्वेष इत्यादि मन की विभिन्न भूमिकाओं का शरीर पर भयंकर प्रभाव पड़ता है। मनोविकार निरन्तर हमें नाच नचाया करते हैं, काम, क्रोध, इत्यादि मनुष्य के षट्रिपु हमें समूल नष्ट करने को प्रस्तुत रहते हैं। अनेक व्यक्ति सर्वत्र इनके मिथ्या प्रलोभनों में ग्रसित होकर अनेक स्नायु रोगों के शिकार बनते हैं।

शरीर में प्रत्येक प्रकार की अनुकूल अथवा प्रतिकूल अवस्था का निर्माण करने की सामर्थ्य मनुष्य के मन में अन्तर्निहित है। मन के गर्भ भाग में जो कुटिल अथवा भव्य मनः संस्कार अंकित होते हैं, वही सिद्धान्त एवं निश्चय रूप धारण करके प्रतिमा रूप बन कर बाह्य जगत् में प्रकट होते हैं और तद्रूप जीवन निर्माण करते हैं।

जो मनः स्थिति हमारे अन्तःकरण में वर्तमान है, उसीने हमारी रूप रेखा का निर्माण किया है।

यदि मनुष्य की आन्तरिक स्थिति तुच्छ एवं घृणित है, तो उसके पीछे दुःख तथा क्लेश इस प्रकार लगे हैं जैसे जीव के पीछे उसकी परछाहीं। मनुष्य अपने विचारों का फल है। वाह्य सत्ताएँ आन्तरिक संगठन की छाया मात्र हैं। स्थूल शरीर का मन सूक्ष्म रूप है, शरीर मन का वाह्य स्वरूप। मन द्वारा विनिर्मित शरीर वह ढांचा (Mould) है, जिसमें वह निरन्तर अविच्छिन्न गति से निज शक्तियां संचारित किया करता है। आन्तरिक भावनाओं की प्रतिकृति मुख, अंग प्रत्यंगों, क्रियाओं, वार्त्तालाप, मूक चेष्टाओं, रहन सहन, व्यवहार में क्षण क्षण में परिलक्षित होती है। जिस प्रकार जिह्वा द्वारा उदर की गति विधि जानी जाती है, उसी प्रकार मुखमण्डल आन्तरिक भावनाओं का प्रतिबिम्ब है।

मन की शरीर पर क्रिया एवं शरीर की मन पर प्रतिक्रिया निरन्तर होती रहती है। जैसा आपका मन, वैसा ही आपका शरीर; जैसा शरीर वैसा ही मन का स्वरूप। यदि शरीर में किसी प्रकार की पीड़ा है, तो मन भी क्लान्त, अस्वस्थ, एवं पीड़ित हो जाता है। वेदान्त में यह स्पष्ट किया गया है कि समस्त संसार की गतिविधि का निर्माण मन द्वारा ही हुआ है। जैसी हमारी भावनाएँ, इच्छाएँ, वासनाएँ अथवा कल्पनाएँ हैं, तदानुसार ही हमें शरीर, अंग प्रत्यंग, बनावट प्राप्त हुई है। मनुष्य के माता पिता, परिस्थितियां, जन्म स्थान, आयु, स्वास्थ्य, विशेष प्रकार के छिन्न भिन्न शरीर प्राप्त करना, स्वयं हमारे व्यक्तिगत (Personal) मानसिक संस्कारों पर निर्भर है। हमारा वाह्य जगत् हमारे प्रसुप्त संस्कारों की प्रतिच्छाया मात्र है।

मनकी विभिन्न भूमिकाएँ—

संसार अपने आप में न निकृष्ट है, न उत्तम। सूक्ष्म दृष्टि से अवलोकने के पश्चात् हमें प्रतीत होता है कि यह वैसा ही है जैसी प्रतिकृति हमारे अन्तर्जगत् में विद्यमान है। हमारी दुनियां वैसी ही है, जैसा हमारा अन्तःकरण का स्वरूप। भलाई, बुराई, उत्तमता, निकृष्टता, भव्यता; कुरूपता, मन को ऊँची नीची भूमिकाएँ मात्र हैं।

हमारे अपने हाथ में है कि चाहे ईर्षा, द्वेष, स्वार्थ की भट्टी में भस्म होते रहें और अपना जीवन शूलमय बनावें अथवा सद्गुणों का समावेश कर अपने अन्तःकरण में शान्ति स्थापित करें।

यदि तुम क्रोध, माया लोभ, ईर्षा, द्वेष अथवा अन्य नाशकारी विकार से उत्तेजित रहते हो और फिर इस बात की आशा रखते हो कि तुम्हारा स्वास्थ्य उत्तम रहे, तो तुम निश्चय ही असम्भव बात की आशा बांधे बैठे हो। ऐसा कदापि सभव नहीं क्यों कि तुम तो निरन्तर अपने मन में व्याधि के बीज बो रहे हो। ऐसी अप्रिय मानसिक अवस्थाएँ गन्दे नाले और कूड़े करकट के उस ढेर की तरह है जिसमें अनेक रोगों के कीटाणु फैल रहे हों। मनोजनित कुत्सित कल्पनाओं, क्रिया प्रतिक्रिया आघात प्रतिघात से भूतप्रेत के अन्ध विश्वास आज भी हमारे आन्तिरिक जगत् में द्वन्द्व उत्पन्न करते हैं। विवेक बुद्धि परास्त हो जाती है। अतः अव्यक्त (Unconscion mind) की उद्भूत अनिष्ट कल्पनाएँ भ्रम या प्रमाद के रूप में व्यक्त होती हैं और भिन्न भिन्न व्यथाओं का कारण बनती हैं।

मन का मैल—वहम—

हमारी अनेक बातें केवल वहम की प्रतिक्रियाएँ हैं। वहम मन का मैल है। यह अज्ञान, अविश्वास एवं मूढ़ता का प्रतीक है। अमुक तिथि को गृह से प्रस्थान न होना चाहिए। छींकने पर कोई भयंकर घटना घटित होने वाली है, छिपकली शरीर पर गिर गई, अतः मृत्यु अवश्यम्भावी है, जन्मपत्रि नहीं मिलती अतः दाम्पत्य जीवन में रोग शोक

कटुता होना ही चाहिए—हमारी ऐसी ही अनेक वहमी धारणाएँ मानसिक निर्बलता की द्योतक हैं। भारतवासी अभी इतने ज्ञान सम्पन्न नहीं हो पाये हैं कि अपनी पुरानी विचार धाराओं को तिलांजलि दे दें। वस्तुतः वे रोग और व्याधि को किसी अदृष्ट शक्ति का व्यापार मान लेते हैं।

अनेक व्यक्ति चिंता क्रोध, भय इत्यादि मनोवेगों द्वारा अपने मनोबल को इतना निर्बल बना लेते हैं कि इनके द्वारा उनकी मानसिक स्थिति अत्यन्त विक्षुब्ध हो उठती है। ऐसे व्यक्तियों का मन सर्वदा किसी अज्ञात भय से उत्तेजित, गिरा हुआ और प्रकम्पित रहता है, चित्त में निरंतर अस्थिरता वर्तमान रहती है, विचार क्षिप्र गति से परिवर्तित होते रहते हैं, स्मरण शक्ति का ह्रास होता है, जरा जरासी बातों में उद्विग्नता, कटुता, कर्कशता उत्पन्न होती है, मन कुत्सित कल्पनाओं का अड्डा बन जाता है, और अन्त में अनेक मनोजनित रोग उन्हें धर दबाते हैं। कभी कभी यह मानसिक दुर्बलता पागलपन में प्रकट होकर अनेक उपद्रव करती है।

व्याधियों का उद्भव स्थान—

अन्तस्तल के गहन स्तरों के नीचे हमारी रहस्यमयी अन्तश्चेतना (Sub-conscious) में हमारे नित्यप्रति के विद्वेष, व्यंगपूर्ण कटुता, ईर्षा, द्रोह तथा असंतोष की जड़ें मिल सकती हैं। मानव के नित्य प्रति के जीवन मे जो परस्पर विरोधिता और असमंजस्य कल्पनातीत रूप से वर्तमान है उनका मर्म हमारी अज्ञात चेतना के भीतर निहित है।

मन को यह अन्तश्चेतना ही व्याधियों का उद्भव स्थान है। प्रत्येक रोग बीज रूप से यहीं से प्रारम्भ होता है। शरीर में उत्पन्न होने से पूर्व प्रत्येक रोग अज्ञात चेतना में अंकुरित पल्लवित एवं फलित होकर क्रमशः शरीर में प्रकट होता है। हमारी जाग्रत चेतना (Conscious ness) उसे आकस्मिक और नूतन समझता है और इन अन्तःस्थित कटुताओं, वैषम्य, असंतोष को भुलाकर अपने आपको (और स्वभावतः दूसरों को) ठगने के लिए बिना विलम्ब कोई छोटा मोटा कल्पित कारण उपस्थित कर देने की तत्परता में कमाल कर दिखाती है।

आइये, व्याधियों के कारण शरीर में न ढूढ़ कर हम मन में ढूँढ़ें, अज्ञात पहलुओं पर प्रकाश डालें मन के गहन स्तर से अपने रोगों की चिकित्सा प्रारम्भ करें। जितना ही हम रोग के अज्ञात् कारणों को, जो अन्तश्चेतना में गढ़े हुए हैं, मालूम करने की चेष्टा करेंगे और उन्हें चेतन मन के समक्ष प्रस्तुत करने में सफल होंगे, उतनी ही लाभ की आशा करनी चाहिए।

आधुनिक काल का मानवजीवन अत्यन्त संघर्ष पूर्ण है, वैज्ञानिक जड़वाद तीव्र गति से समाज में विस्तीर्ण हो रहा है, मानव तृष्णा, ईर्षा, अहंकार इतने बढ़ गए हैं कि इन समस्त शुभ अशुभ इच्छाओं की परितृप्ति असंभव है। अतृप्त अशुभ संस्कार अत्यन्त मार्मिक रूप में फूटे पड़ रहे हैं। आन्तरिक अन्तर ज्वाला, कशमकश. आघात प्रतिघात, वैषम्य, भय, भ्रांति और चिन्ता के विचार, अनिष्ट इच्छा के विकृत विचार दीमक की भांति शरीर को जर्जरित करते तथा बलात्कार हमें रोग व्याधि ग्रस्त रखते हैं। मनुष्य के जीवन की दुर्दशा करने वाला और रोगों से परेशान करने वाला वास्तव में हमारा मन ही है।

———

प्रत्येक युवक तथा प्रत्येक युवती जीवन में एक बार अपने को सब से सुन्दर समझते हैं, और वैसा समझ कर वह भ्रम पैदा करते हैं जो जीवन मे कष्ट प्रद होता है।

× × ×

किसी के प्रति बुरे विचारों को रोकना तभी संभव है जब हम उसके प्रति अपने संवेगों में परिवर्तन कर दें। × × ×

मनोजनित रोगों की उत्पत्ति एवं विकास।

मनोजनित रोगों का प्रारम्भ—

आदि काल का आदिम पुरुष देश-काल-समाज आदि के सभ्य बन्धनों से सर्वथा उन्मुक्त था। सभ्यता के नाना प्रकार के मिथ्याडम्बर, सभ्यता के वज्र जैसे कठोर नियम, लोक निन्दा का भय, अनेक प्रकार के प्रचलित सम्प्रदायों की सारहीन उलझनें, उचित-अनुचित का सीमाबन्धन या विवेक का नियन्त्रण न होने के कारण उसकी भीतरी रागात्मिका प्रवृत्तियों, निंद्य वासनाओं, निर्द्वन्द्व पाशविक मनोवृत्तियों, मनोविकारों, इच्छाओं का बाह्य सृष्टि के साथ पूर्ण रूप से सामंजस्य (Harmony) था। वासनाओं, मनोवृत्तियों, मनोविकारों की परितृप्ति का खुला अवसर प्राप्त होता था। कोई उँगली उठाने, टीका टिप्पणी करने या बुरा भला कहने वाला न था। प्रेम, क्रोध, ईर्षा, द्वेष, घृणा, हास उत्साह, भय, करुणा आदि मनोवेगों (Emotions) का प्रवाह अबाध था। उसमें विवेक, सत्-असत् तथा नैतिकता के उत्कृष्ट विचारों का स्फुरण नहीं हुआ था। विशुद्ध सुख की अनुभूति पर हाथ पांवों के संचालन द्वारा, रो पीट कर, चिल्ला कर मन के घाव पर मरहम लेपन कर लिया जाता था। दंड का भय, लोक निंदा का डर, नियंत्रण न होने के कारण निर्द्वन्द्व मनोवृत्तियां खुले रूप से व्यंजित होती थीं। जिस युग में मानव सभ्य नहीं हो पाया था, लाखों वर्ष पूर्व के उस उच्छृंखल युग में पाशविक मनोवृत्तियां उसके जीवन की प्रत्येक गतिविधि को संचालित करती रहती थीं।

विकास के स्वभाविक नियमों के अनुसार क्रम से मानव ने सभ्यता को अपनाया। समाज ने अपने नियम बनाये। रूढ़ियां, उचित अनुचित का ज्ञान, यश अपयश का विवेक, सामाजिक क्रिया-प्रतिक्रिया, आघात प्रतिघात, वैयक्तिक ऊहापोह क्रमशः विकसित होते गए। सामाजिक प्रतिक्रियाओं से अहंकर जागृत हुआ, आत्म गौरव, सौभाग्य, दुर्भाग्य, विवेक बुद्धि का नियन्त्रण, अनेक प्रकार के मर्श-विमर्श, नैतिकता के संयत विचारों का उन्मेष हुआ।

मानसिक व्याधियों का विकास—

यहीं से समस्त झगड़ों की जड़ प्रारम्भ होती है। यश अपयश, सामाजिक टीका टिप्पणी के विचार से हम आदिम पाशविक निर्द्वन्द्व मनोवृत्तियों, कुत्सित वासनाओं को छिपाने लगे। हमारा अहंकार विवेक द्वारा संचालित होने लगा। नैतिक बुद्धि ने दुर्वासनाओं के ऊपर नियंत्रण प्रारंभ किया। यह नहीं, यह हो, यह अच्छा यह बुरा, यह उचित यह अनुचित, यह कुरूप यह रूपवान, यह उत्तम यह निकृष्ट, इन दो परस्पर विरोधी अनुभूतियों का असामंजस्य प्रारम्भ हुआ। शुभ-अशुभ को निर्णय करने वाली विवेक बुद्धि ने अनुभूतियों के मार्ग-निर्धारण का कार्य अदूरदर्शी सरकार की तरह, निर्दयतापूर्वक प्रारम्भ किया। मानसिक जगत् में भयंकर हाहाकार का कोलाहल मच गया। बेचारी कितनी ही इच्छाओं, मनोवृत्तियों, भावनाओं, कल्पनाओं, को निर्दयता पूर्वक कुचल डाला (Suppress) गया वासनाएँ प्रताड़ित होकर बड़ी अशान्त, अतृप्त, अस्थिर रहने लगीं। उन्होंने इस कठोर नियंत्रण के विपक्ष में क्रान्तिकारियों का कार्य प्रारम्भ किया। यदि दूरदर्शी सरकार की भाँति विवेक बुद्धि नियंत्रण का कार्य कम करती, या धीरे धीरे करती, तो अन्तःकरण की विभिन्न मनोवृत्तियों में इतनी क्रान्ति, इतनी अस्त व्यस्तता, इतना हाहाकार, इतनी अशान्ति उत्पन्न न होती। एक दम नियंत्रण कर देने से संघर्ष

(Conflict) उग्रता रहा। विपक्षी मनोवृत्तियों को विरोध का पर्य्याप्त अवकाश मिलता रहा।

निर्दयता पूर्वक दमन (Repression) के फलस्वरूप वासनाओं में संकट उत्पन्न होता है एवं व्यक्ति विच्छेद प्रारम्भ हो जाता है। अब विवेक बुद्धि के तीव्र राज्य में ये क्रान्तिकारी अतृप्त, असंतुष्ट, अशान्त वासनाएँ कहां जांय ? हमारे मन का कोई भी संस्कार निश्चेष्ट नहीं होता। जीवन का प्रत्येक अनुभव कहीं न कहीं अवश्य रहेगा चाहे वह प्रिय हो अथवा अप्रिय। वस्तुतः ये क्रान्तिकारी मनोवृत्तियां कहीं न कहीं त्राण पाने की चेष्टा करती हैं और अज्ञात चेतना (Un-conscious) के अतल गह्वर में जा छिपती हैं।

विवेक बुद्धि का नियंत्रण—

मनुष्य की अज्ञात चेतना (Un-conscious) का अतल क्षेत्र इतना व्यापक, गहन एवं अगाध है कि हमारी अनेक टूटी फूटी इच्छाएँ, प्रसुप्त वासनाएँ, अतृप्त वृत्तियां, कुचली हुई हसरतें, निर्द्वन्द्व मनोवृत्तिएँ, पाशविक मनोभावनाएँ सामूहिक रूप से इसी अज्ञात क्षेत्र में क्रान्तिकारियों के दल (Rebels) के समान छुपी रहती हैं। ये कभी न मरती हैं, न लुप्त होती हैं, प्रत्युत जब तक विवेक बुद्धि का प्रभुत्व अधिक होता है, नैतिकता सतर्कता से कार्य करती है, तब तक ये अतृप्त वासनाएँ कुछ काल के लिए अज्ञात चेतना के गहन गह्वर में चुपचाप बैठी रहती हैं।

जैसे एक शक्तिशाली सम्राट् के राज्य में उसके आतंक से प्रतिद्वन्द्वी दब जाते हैं, छुपे छुपे षडयंत्र किया करते हैं, कुछ उपद्रव नहीं करते, किन्तु उसका नियंत्रण, आतंक, भय हट जाने से पुनः विरोध करते हैं, उसी प्रकार विवेक बुद्धि के सतर्क रहने तक तो ये अतृप्त वासनाएँ कुछ नहीं बोलतीं, चुपचाप पड़ी रहती हैं किन्तु उसके प्रभुत्व के क्षीण होते ही ये प्रसुप्त चित्तवृत्तिएँ एक दम शक्तिशालिनी हो उठती हैं और हमारी जाग्रत चेतना से भयंकर संघर्ष करती हैं। ऐसे अवसरों पर हम कहा करते हैं कि मानव का दानव जागृत हो उठा है।

आधुनिक मनोविश्लेषण के प्रधान आचार्य डाक्टर जिगमुंड फ्रायड ने दलित वासनाओं की तुलना ग्रीक टिटान जाति के उन दैत्यों से की है जिनके निरन्तर उपद्रव से आक्रान्त होकर देवताओं ने उन्हें तातार की खाड़ी में फेंक दिया था। तत्पश्चात् उनके ऊपर इतने बड़े बड़े पत्थर की शिलाएँ डाली गईं थीं कि पुनः न उठ सकें। डा० फ्रायड की प्रसुप्त मनोवृत्तियों का मिलान हम वेदान्त के कारण शरीर से भी कर सकते हैं। कारण शरीर सब वैयक्तिक भावनाओं का मूल स्रोत है अर्थात् सब व्यक्त भावनाएँ बीज रूप से कारण शरीर में निहित रहती हैं। वह हमारे शरीर का अव्यक्त रूप है।

शैशव की दलित अनुभूतियां—

जन्म से लेकर बचपन तक हमें संसार में अनेक शूलमयी कटुताओं का सामना करना होता है। हमारे माता पिता, बड़े भाई बहिन, समाज, अध्यापक, राज्य के नियम हमारी निर्द्वन्द्व मनोवृत्तियों की पूर्ति में बाधा उपस्थित करते हैं। अतः हम विस्मृत करने की आकांक्षा से उन दुःखद अनुभूतियों को अपनी ज्ञात चेतना के विशाल पाषाण-पर्वतों में दबा देते हैं। लगातार यह दमन क्रिया चलती रहती है। हमारी जाग्रत चेतना निरन्तर हमारी अभद्र इच्छाओं, वासनाओं, अतृप्त वृत्तियों को दबाती (Repress) चलती है। कालान्तर में, इस दमन क्रिया के फल स्वरूप, चेतना जगत् के अज्ञात प्रदेश में अव्यक्त या प्रसुप्त वासनाओं का महान् राज्य स्थापित हो जाता है। हम इस जगत् का हाल कुछ भी नहीं जानते। हमें यह ज्ञान नहीं रहता कि हमारे अंदर कौन कौन वृत्तियां शैशवावस्था से दबायी गई हैं

और वे किस प्रकार हमारे परवर्ती जीवन का पथ निर्धारित करती हैं। इस रहस्यमय गुप्तलोक में क्या क्या सृष्टि हो रही है, किस प्रकार हमारी आयुवृद्धि के साथ साथ इसकी परिधि तथा गहराई बढ़ रही है, इसका प्रायः हमें कुछ भी विवेक नहीं रहता।

सामूहिक अज्ञात चेतना—

युग (Jung) साहब का मत है कि मानव के व्यक्तिगत जीवन में जिस अज्ञात प्रदेश की सृष्टि होती है, वही सब कुछ नहीं है। अज्ञात् चेतना केवल उसी की विनिर्मित नहीं है। जुंग महोदय के मतानुसार प्रत्येक मानव शिशु अपने साथ एक सामूहिक अज्ञात चेतना लेकर पृथ्वीतल पर आये हैं। यह सामूहिक अज्ञात चेतना (Collective unconscious) हजारों लाखों वर्ष पहिले से मानव मन में बनती चली आ रही है। वंशानुक्रम से मनुष्य की सामूहिक अज्ञात चेतना "भावस्थिर" होकर प्रस्तुत रहती है।

अज्ञात चेतना में दबी हुई वासनाओं से ही मानसिक व्याधियां उद्भूत होती हैं। अव्यक्त प्रदेश की कुचली हुई वृत्तियाँ प्रत्यक्ष रूप से तो जीवन पर्य्यन्त दबी रहती हैं पर परोक्ष रूप मे विभिन्न रूपों में फूटती रहती हैं। ये मस्तिष्क में चुपचाप चली आती हैं और नाना प्रकार के विकारों की सृष्टि करती हैं।

उद्दाम वासनाओं का स्वप्न में प्रकाशन—

अव्यक्त प्रदेश की प्रसुप्त वासनाएँ विवेक बुद्धि के भय से दिन में तो प्रकट हो नहीं सकती, किन्तु रात्रि में सोते समय जब जाग्रत चेतना निर्बल पड़ जाती है, तो मस्तिष्क में चुपचाप रेंगती हुई प्रविष्ट हो जाती हैं। ये क्रान्तिकारी वासनाएँ स्वप्न में भयंकर तांडव करती हैं और हमें ऐसे अजीब अजीब कौतूहल वर्द्धक स्वप्न दिखाई देते हैं जिनका अर्थ भी हम नहीं समझ पाते (स्वप्न-विज्ञान पर प्रोफेसर महेन्द्र जी की प्रसिद्ध पुस्तक "हमें स्वप्न क्यों दीखते हैं?" पढ़िये-स०)। ज्यों ज्यों ये निर्द्वन्द्व वासनाएँ परितृप्ति का मार्ग ग्रहण करती हैं, त्यों त्यों इन्हें एक निर्धारित मार्ग का अवलम्बन करना पड़ता है। इस विशिष्ट मार्ग का द्वारपाल "अहंकार" है। अहंकार को विवेक बुद्धि (जाग्रत चेतना) के आधीन रहना पड़ता है। वस्तुतः ये क्रान्तिकारी वासनाएँ चेतना (Focus of the mind) में रेंग कर चली तो आती हैं किन्तु डरती रहती हैं। इस प्रकार स्वप्न में भी संघर्ष चला करता है। स्वप्न में देश-काल विवेक-बुद्धि परिस्थिति की मर्यादा का उल्लंघन कर ये वासनाएँ किंचित् काल के लिए शान्त होना चाहती हैं। "स्वप्नदोष", सौम्नेम्बुलिज्म (अर्थात् निद्रित अवस्था में चलना फिरना) इत्यादि रोग इसी प्रकार उत्पन्न होते हैं।

मानसिक व्याधि क्या है?

जाग्रत एवं अज्ञात चेतना का द्वन्द्व-युद्ध रोग अथवा व्याधि कहलाता है। दुःखद अनुभूतियों का परोक्षरूप में भिन्न भिन्न प्रकार से प्रकाशित होना ही व्याधि है। अन्तर्द्वन्द्व के फल स्वरूप ही पागलपन, भ्रम, सनकीपन, मूर्खता, अपेक्षाकृत बेढगे अनोखे, अनुचित और असंगत व्यवहार, निराशा, चिंता, अन्यमनस्कता, विचारों की विकृति, सठियाजाना, शून्यमनस्कता, आत्महीनता, जैसी प्रतिक्रियाएँ उद्भूत होती हैं। साधारणतः भद्दा मजाक, गालियां, अश्लील व्यवहार, विचित्र चेष्टाएँ मानसिक एवं शारीरिक रोगों की सृष्टि परोक्ष रूप में फूटती हुई दुःखद अनुभूतियों के फल स्वरूप होती हैं। उन्माद, लकवा, प्रमाद, कोढ़, चर्मरोग, दिलकी धड़कन, शूल, हिस्टीरिया, मधुमेह, बदहजमी, मृगी आदि सब मानसिक व्याधियां अव्यक्त की प्रसुप्त वासनाओं की ही प्रतिक्रियाएँ हैं।

छोटे मोटे अनेक रोग केवल मानसिक व्यथाओं के अन्तर्द्वन्द्व के परिणाम स्वरूप शरीर में प्रकट होते हैं।

व्यक्त एवं अव्यक्त के असामंजस्य का प्रतीक ही अन्तर्द्वन्द्व है। जाग्रत एवं अज्ञान चेतना के वैमत्य का नाम ही आधि-व्याधि है। जिस अनुपात में अव्यक्त की उद्भूत वासनाएँ दबाई जांयगी, उसी अनुपात में व्याधियां द्विगणित होंगी। इसी अनुपात में हम सुखी या दुःखी रहेंगे, प्रफुल्ल अथवा चिंतित रहेंगे। जितनी ही इनकी परितृप्ति होगी, तदानुसार ही मानसिक व्यथाएँ न्यून होती जांयगी। उसी अवस्था को मोक्ष कहते हैं जिसमें पूर्ण मतैक्य, पूर्ण समस्वरता (Harmony) तथा पूर्ण परितृप्ति रहे। जिस स्थिति में हमारी अज्ञात चेतना को प्रकाशित होने के लिए गुप्त वेश धारण करने पड़ते हैं, वही रोग ग्रस्त स्थिति है। हमारी मानसिक व्याधियां अज्ञात चेतना से उद्भुत कुचली हुई दुःखद अनुभूतियां की ही प्रतरूप हैं। उनकी शक्ति रूपान्तर होकर व्याधियों के विभिन्न रूपों में प्रस्फुटित है। फलतः समस्त जीवन पर अज्ञात एवं अप्रत्यक्ष रूप से उनका प्रभाव पड़ता रहता है। यह उद्भूत वासनाएँ विकारों में प्रकट होकर मानसिक एवं शारीरिक स्वास्थ्य के लिए विषमय सिद्ध होती हैं।

कभी कभी रुद्ध वासनाएँ इतनी उग्र रूप धारण करती हैं कि मानसिक स्थल पूरा का पूरा अव्यवस्थित एवं अनियमित हो जाता है। मानसिक नियन्त्रण यकायक टूट जाता है और हम पागल हो जाते हैं! हमारे विचारों और मनोभावों में अनेक विकृतियां आ जाती हैं और हम अनेक विवेकशून्य व्यवहारों में प्रविष्ट होते हैं।

लीलामयी अन्तश्चेतना के चमत्कार।

हमारे कौतूहलवर्द्धक कार्यों का मूल स्रोत—

जीवन में अनेक बार हम ऐसे कौतूहलवर्धक, अजीब कार्य कर देते हैं, जिसका कोई स्पष्ट उद्देश्य हमारे मन में वर्तमान नहीं होता। हमें अनेक बार आश्चर्य होता है कि हम जो कुछ कहना चाहते हैं, उससे कुछ भिन्न ही कार्य विस्मय विमूढ़ हो कर डालते हैं। हमें इष्ट कुछ और है और इच्छा न रहने पर भी प्रत्यक्ष रूप से हम कुछ पृथक् ही कार्य कर रहे हैं। अनैच्छिक एवं निरपेक्ष दृष्टि से सम्पादित इन परस्पर विरोधी कार्यों का भेद हमारी बुद्धि स्पष्ट नहीं कर पाती।

अनेक व्यक्ति सोचा करते हैं कि अन्य व्यक्ति उनके विषय में क्या सोचते होंगे? वे हमारे वस्त्र, रहन सहन, आचार विचार कार्यों का बारीकी से निरीक्षण करते हैं। कुछ व्यक्ति प्रत्येक की शिकायत करने में जीवन का चरम लक्ष्य समझते हैं और दिन रात परछिद्रान्वेषण में लिप्त रहते हैं। हजारों आत्म-ज्ञानी वर्षों से शान्ति एवं वैराग्य का पाठ पढ़ते आ रहे हैं, फिर भी मानसिक समस्वरता उनसे कोसों दूर है। अनेक आदमी धन-धान्य पूर्ण होते हुए भी गमग़ीन प्रतीत होते हैं, मुखमुद्रा निस्तेज रोनी शकल लिए भयंकर पीड़ा से ग्रस्त मालूम होते हैं। अनेक व्यक्ति इच्छाओं के क्षोभ एवं अप्रत्यक्ष व्यग्रता से वृद्धावस्था के चिह्न प्रकट कर रहे हैं।

कुछ समय हुआ मोर्गन महाशय के पास एक रोगी आया। वह अत्यन्त भयभीत शोकयुक्त तथा उद्विग्न था। जब उससे कारण पूछा तो वह कहने लगा, ' मेरे पाँव सुन्न, संज्ञाहीन होते जा रहे हैं, लकवा असर कर रहा है।" फिर उसने पूर्व वृतान्त

का वर्णन करते हुए निर्देश किया कि दो वर्ष हुए एक ज्योतिषी ने कहा था कि तुमको लकवा होगा, किन्तु कब वह होने को होगा यह क्रमशः तुम्हें स्वयं ज्ञात हो जायगा। तब से एक अज्ञात भय, एक अप्रत्यक्ष संशय उसके मन में प्रविष्ट हो गया और उस अज्ञात भय की ही यह सब प्रतिक्रिया थी। दुष्ट मनुष्य दूसरों को इसी प्रकार ठगते हैं और हमारी अनेक अयोग्य शंकाओं को जागृत कर देते हैं। हमारा मन अशिक्षित होने के कारण अंधकार मय होता है, अतः हम ठोकर खाकर गिर पड़ते हैं।

एक महाशय ने डा० दुर्गाशंकर जी नागर को लिखा था—"मेरा मन हर समय एक अज्ञात भय से विक्षुब्ध रहता है। प्रत्येक घड़ी यह विचार बना रहता है कि मैं मर न जाऊँ। शरीर में कोई रोग नहीं मालूम होता, फिर भी हिम्मत और साहस में दीमक सी लगी हुई प्रतीत होती हैं। हर मनुष्य की बात मन में गहरी बैठ जाती है। बुरे विचार का तत्काल प्रभाव हो जाता है, चिंता, शोक, हीनता का तूफ़ान अन्तर्जगत् में उठता है। बड़े बड़े अनुभवी महात्माओं के पास रहा हूं, वर्षों उनकी सेवा की है, हजारों पाठ गीता के किए हैं किन्तु आज कोई सहायक नहीं हो रहा है। चेहरे पर कालापन तथा झुर्रियां पड़ती जा रही हैं। मुझे भय है कि कहीं मैं पागल न हो जाऊँ।"—इस प्रकार हजारों मनुष्य किसी न किसी भांति के जाल में ऐसे फँसे हुए रहते हैं कि उसी में उनकी जीवन लीला समाप्त होती है।

अज्ञात चेतना में क्या क्या है?

मनुष्य की अज्ञात चेतना (Sub conscious) में इन सब वहमों, हास्यास्पद कार्यों, परस्पर विरोधी कर्मों, अनैच्छिक बातों, अद्भुत चेष्टाओं, अकारण उत्थित वेदनाओं, विस्मय विमूढ़ अप्राकृतिक कल्पनाओं की जड़ें प्रस्तुत रहती हैं। जिस प्रकार कमल का पुष्प जल के ऊपर तैरता है किन्तु उसकी जड़ तालाब के पेंदे में लगी रहती है. उसी प्रकार शरीर के समस्त विकारों, अद्भुत चेष्टाओं की जड़ें मनुष्य की इस रहस्यमयी अज्ञात चेतना में अंकित रहती हैं। यह चेतना जाग्रत चेतना से अधिक सजग, सचेत एवं जागरूक है। तुच्छ से तुच्छ, हलकी से हलकी, छोटी से छोटी अनुभूति का सूक्ष्मातिसूक्ष्म आभास यहां अंकित मिलता है। दिन रात के चौबीसों घंटे अन्तश्चेतना का व्यापार अखंडरूप से निर्विघ्न चलता रहता है। यह साधारण तथा असाधारण घटनाओं को समानरूप से नोट करती चलती है। किसी भी कार्य को माफ़ नहीं करती, न दया ही दिखाती है। जाग्रत चेतना से अज्ञात चेतना का दीर्घ राज्य है। इसका अनन्त क्षेत्र इतना व्यापक, गहन, एवं अगाध है कि इसके अन्दर देवत्व तथा दानत्व के समस्त मनोभाव समान रूप से अवगुंठित हैं। यह दुर्वाद, अपवाद, निंदा, दुरभिसंधि, प्रवचना, धूर्तता, ठगी, स्वार्थ के लिए भी उतनी ही जागरुक है जितनी दया, प्रेम, करुणा के निमित्त। अनुकूलता–प्रतिकूलता, दुःखमयी शैशवावस्था की अनुभूतियां, वासनाओं का दमन (Repression) गुप्त रूप से अन्तस्तल के इसी गहनस्तर में निहित रहते हैं। हमारी आकस्मिक एवं अद्भुत स्फूर्ति का कारण वास्तव में यही कौतुकमयी अन्तश्चेतना है। एक महात्मा ने अन्तश्चेतना का प्रतिपादन करते हुए कहा है—

केनापि देवेन हृदिस्थितेन,
यथा नियुक्तोऽस्मि तथा करोमि।

—"मेरे हृदय के भीतर किसी अज्ञात देवशक्ति का वास है, वह मुझसे जैसा करवाता है, वैसा ही मैं करता हूं।"

अन्तश्चेतना में अनेक ऐसी जड़ें वर्तमान हैं जिनके परिणाम स्वरूप वाह्यजगत में मनुष्य सनकीपन, विवेकशून्य कार्य, अकारण चेष्टाएँ,

भिन्न भिन्न प्रकार के मानसिक रोग।

सभ्यता ने हमें अनेकों अभिशाप प्रदान किए हैं। आज के उन्नत एवं अभ्युदय के युग में हजारों मनुष्य एक अथवा अनेक प्रकार के मानसिक रोगों से पीड़ित हैं। वे अपनी व्यथाएँ, मनोवेदनाएँ सुनाते नहीं थकते। एकान्त में कोने में पड़े पड़े निःश्वास निकालते और हाय-हाय करते हुए दिनों को धक्के दे रहे हैं। हृदय में ऐसे ऐसे रोग उत्पन्न होगए हैं कि उनका मुखमंडल म्लान एवं चेहरा विकृत सा हो उठा है। पूजाघर, मंदिरों, एवं एकान्त स्थानों में भी इन्हें शान्ति नहीं मिल रही है। बिना पतवार की नौका की तरह वे यत्र तत्र मन्तर जन्तर की खोज में फिर रहे हैं। उफ्, इनकी कैसी दयनीय स्थिति है।

वहम (हाइपोकोण्ड्रिआसिस)—

हमारे मनोजनित रोगों में वहम प्रधान है। मानव मन में सन्देह, शंका तथा अहित कल्पना की जो मूल प्रवृत्ति है, वह वहम की जननी है। वह मूढ़ता एवं अज्ञानांधकार के फल स्वरूप उत्पन्न होता है। मनुष्य अपने विषय में तनिक भी 'बुराई नहीं सुन सकता। यदि कोई झूठ मूठ कुछ अप्रिय या चिंतनीय बात कह दे तो उसे अन्तर्मन तुरन्त स्वीकार कर लेता है, और वह क्रमशः बढ़ता रहता है। अपढ़, गँवार, अशिक्षित व्यक्तियों तथा विशेष रूप से पुराने विचार वाली स्त्रियों में बहुत वहम होता है। यह दुर्बल चित्त का क्षुद्र मनोविकार है। दुर्बल इच्छाशक्ति वाले व्यक्ति शंकित होते हैं और अपने वहम के कारण नरक की यातनाएँ भुगतते हैं। ऐसे व्यक्ति कुतर्कवादी, संशयी, अविश्वासी, चिन्तित, निराशावादी, अतृप्त, असंतोषी चित्त के होते हैं।

उत्तेजना (Excitement)—

उत्तेजना से मन की प्रकम्पना तीव्र हो उठती है, नसों में यकायक तीव्रता आ जाती है। अन्तःकरण में अनावश्यक धुकपुक मच जाती है और किंचित काल के लिए हाथ पांव फूल जाते हैं। कुछ समय के लिए सम्पूर्ण शरीर आन्दोलित हो जाता है। उत्तेजना का प्रभाव विशेषतः हृदय पर पड़ता है जिसके फल स्वरूप वह निज कार्य यथोचित रीति से नहीं कर पाता। श्वास फूल उठती है और छाती में शूल उत्पन्न होती है। उत्तेजना का मुख्य कारण मन में एकत्रित अनेक प्रकार के मिथ्या भय हैं। वे अनायास ही एकाएक विकृत होकर प्रकट हो जाते हैं और हम थोड़ी देर के लिए अस्त व्यस्त हो उठते हैं। कपोल कल्पित दुःखों या कोई तीव्र रोमांचकारी (Sensational) अनुभव, वृतान्त, कविता, से मनोविकारों का विस्फोट होता है और मनुष्य को उत्तेजना होती है।

नैराश्य (Malancholia)—

दो चार बार किसी कार्य में निष्फलता हो जाने से निराशा उत्पन्न होती है। अविश्वास उत्पन्न होता है तथा चारों ओर अंधकार ही अंधकार ही नज़र आता है। नैराश्य एक प्रकार का भयंकर राक्षस है जो हमारे नाश की ताक में बैठा रहता है। ऐसा रोगी सदैव बुराई की ओर देखता तथा असफलता के ही वचन उच्चारण किया करता है। वह जीवन के अन्धकारमय एवं अ[illegible]तिकर पहलू को ही निहारता तथा अपने लिए अहित की, संकीर्णता की, असिद्धि की ही बात

असंगत बातचीत एवं व्यवहार के ढग अनेक प्रकार की बहानेवाजी किया करता है। सामाजिक जीवन में अन्तश्चेतना अनेक महत्त्व की प्रतिक्रियाएँ प्रस्तुत करती है।

सोचता है। "उफ् सब कुछ नाश होगया, कुछ भी शेष नहीं रहा, अब जीवन किस काम का, अब तो मौत हमें उठा ले तो उत्तम है।" वह ऐसी बातें सोचता है और बिना बाल सँवारे, मलीन वस्त्र पहिने, टूटे फूटे जूते धारण कर रोती सूरत बनाये नौकरी पर जाता है। नैराश्य मानव जीवन का घातक शत्रु है।

उद्वेग—

उद्वेग मन की अस्त व्यस्त अवस्था है जो निष्फलता से उत्पन्न निराशा से जन्म लेता है। उद्वेग भय का मुख्य अङ्ग है। इससे मन में बड़ी घबराहट उत्पन्न होती है। मानसिक उद्विग्नता के कारण अनेक व्यक्ति पागल हो जाते हैं। ज्ञानतन्तु की निर्बलता, निश्चय बल की क्षीणता, मनोविकारों का प्रतिकूल दिशा में वेग, रुग्ण यकृत के कारण हृत्पिंड या अनहित चक्र में संकोचन—उद्वेग के मुख्य कारण हैं। उद्वेग से जीवन शक्ति का ह्रास होता है, बहुत से भय झूठ मूठ दिखाया करता है और समस्त जीवन को नीरस बना देता है।

अति चिन्तित अवस्था (Anxiety state)—

अनहोनी, अनिष्ट, बुरी बातों की थोथी कल्पनाएँ दूसरों की बुरी हालत देख कर स्वयं अपने लिए भी वैसी ही स्थितियों को स्मृति पटल पर पुनः पुनः लाना, अपनी व्याधियों को कल्पित जगत में उद्दीप्त करके देखना, अनुचित बातों से कल्पना लोक में सामंजस्य स्थापित करना, चिंता के मुख्य कारण हैं। व्यर्थ की प्रतिकूलताओं से परेशान रहने से मन बड़ा क्षुब्ध, अशान्त रहता है। हमें संसार के समस्त व्यक्ति अपने शत्रु नजर आते हैं। हमारा मन डांवाडोल, खोया खोया सा, निर्जीव, शिथिल मालूम होता है। अन्तःकरण अन्धकार से आवृत हो जाता है। निःसार वस्तुओं के चिंतन में हम निष्प्रयोजन जीवन शक्ति का अपव्यय करते हैं। निराशा, चिंता, तथा ऊलजलूल बातों से विकसित होकर क्षय रोग उत्पन्न होता है, रात-दिन जो व्यक्ति दुःख, शोक, रोग की कल्पनाओं से आच्छादित रहते हैं, दुःखमय स्थिति का ही चिंतन किया करते हैं, वे भिन्न भिन्न रोगों से ग्रस्त होकर जीवन अन्त करते हैं।

विभ्रम—

इस मानसिक व्याधि में मस्तिष्क के ज्ञानतन्तु इतने निर्बल हो जाते हैं कि जरा जरा सी बातों पर मनुष्य शंका करने लगता है। जरा सी भी दुःख की चर्चा सुनी या समाचार पत्र कोई प्रतिकूल खबर पढ़ी कि इनके अन्तःकरण पर काली छाया पड़ जाती है और सब प्रकार की प्रतिष्ठा, मान, धन, धान्य होने पर भी ये लोग बेचैन बने रहते हैं और क्षण क्षण गहन निश्वास फेंकते रहते हैं। एक क्षण भी इनके जीवन में शान्ति, चैन, या स्थिरता नहीं रहती। इस रोग के रोगी दिन में सैंकड़ों बार हर्ष शोक का अनुभव करते हैं। सन्देह, भ्रान्ति, तथा अस्थिरता इनके मन में निरन्तर चला करते हैं। मुख मंडल पर व्यग्रता तथा क्षोभ के चिह्न अङ्कित हो जाते हैं।

हिस्टिरिया—

हिस्टिरिया का मानसिक रोग प्रायः अतृप्त कामेच्छा से सम्बन्ध रखता है। अविवाहित स्त्रियां या निसंतान वधुएँ इसकी शिकार बनती हैं। शारीरिक कमजोरी, अत्यधिक घबराहट, उत्तेजना, उद्वेग, आकस्मिक दुःख मस्तिष्क के संतुलन को अस्तव्यस्त कर देते हैं और अज्ञात चेतना की अतृप्त वासनाएँ भयंकर विस्फोट कर देती हैं।

अन्यमनस्कता—

इस प्रकार की भ्रमित मानसिक स्थिति में रोगी, न उत्तेजित रहता है, न निरुत्साहित। वह बिल्कुल अन्यमनस्क (Blank) रहता है। उसका मन शून्य मय हो जाता है। चेतना विचार, बुद्धि

कुछ काल के निमित्त बिल्कुल स्थिर हो जाती है। जहां बैठा दो, वहीं निष्द्रम, निश्चेष्ट बैठा रहेगा। न कुछ इच्छा प्रकट करेगा न अभिलाषा। उसकी मुख मुद्रा से यह स्पष्ट नहीं होता कि आखिर वह चाहता क्या है। यदि उससे कुछ पूछो तो वह सुनी अनसुनी कर देता है या बड़ा बेढंगा, अपूर्ण, अस्पष्ट, निरर्थक उत्तर देता है। भिन्न भिन्न प्रकार की मानसिक न्यूनताएँ, मस्तिष्क के विभिन्न क्रिया-केन्द्रों की समुचित परिपक्वता न होने से यह व्याधि उत्पन्न होती है।

आत्मग्लानि--

"हमसे कोई महापाप होगया अब मोक्ष नहीं हो सकती, मैंने सर्वनाश कर लिए, इतनी भारी गलती करने पर मुझे जीवित नहीं रहना चाहिए"– ऐसे विचारों को लेकर रोगी बड़ा पछताता दुःखी होता है। कुछ दिन पूर्व हमारे पास एक ऐसी ही रोगिणी आई थी जिसे बीमारी में कुछ अपवित्र दवाइयां दी गई थी। वह कहा करती थी "मैंने बकरे खाये हैं, उनकी हड्डियों को चबाया है, अक् थू अक् थू।" ऐसा कहकर वह थूकती और हलक में उँगली डाल कर उल्टी करने का उपक्रम करती।

आत्म-हीनता (Inferiority)—

अनेक व्यक्ति इतने संकोची, लज्जाशील होते हैं कि महान् अपराधी की तरह चुप्पी धारण किए रहते हैं और हमेशा नीची दृष्टि किए रहते हैं। उन्हें ऐसा प्रतीत हुआ करता है कि संसार उनकी प्रत्येक क्रिया, प्रत्येक हाव भाव, कपड़े जूते टोपी सब कुछ घूर घूर कर देख रहा है, जैसे पत्थर पत्थर में हजारों नेत्र हों और सबकी सब उसे हड़प जाने को प्रस्तुत हों। आत्महीनता का प्रधान कारण भय है। रोगी के मानसिक संस्थान में उसका अंश अत्यन्त अधिक मात्रा में होता है। वह सब प्रकार की सभा, समाजों, मनुष्यों की भीड़ से हटता है, हमेशा शर्मिंदा रहता है और अपने आपको दीन, हीन, दुर्बल, क्षुद्र, अपराधी मानता है। यह बड़ा अविश्वासी होता है। आत्महीनता के लक्षण ये हैं— आंखें नीची कर लेना, सकपका जाना, चेहरे पर सुर्खी दौड़ जाना, घबरा-सा जाना, किंकर्तव्य विमूढ़ हो जाना, चुपचाप दूसरे की अनुचित बातें स्वीकार कर लेना, उदासीन गंभीरता धारण कर लेना। ऐसे रोगी को अपने छोटे मोटे दोष अक्षम्य अपराध की तरह दीखने लगते हैं और कई बार दारुण मानसिक यातना भोग कर रोगी आत्म हत्या तक कर लेता है।

कायरता--

एक प्रकार की कुत्सित मानसिक दुर्बलता है। ऐसा व्यक्ति प्रत्येक कार्य को संदिग्ध चित्त से सम्पन्न करता है। मनोवैज्ञानिकों का निष्कर्ष है कि कायरता जन्मजात दुर्गुण नहीं है। कायरता एक प्रकार की आदत है और क्रमशः धीरे धीरे और आदतों के समान उत्पन्न होती है। अव्यक्त प्रदेश में अनेक वर्षों में संकलित अशुभ संस्कारों का परिणाम है। कायरता तथा निराशावाद साथ साथ रहती हैं। कायर मनुष्य जरा जरा सी बातों में दब कर नर्क की यन्त्रणाएँ भोगा करता है।

भय—

परमात्मा ने मनुष्य को वीर और साहसी बनाया था किन्तु संसार में अनेक मनोजनित शंकाओं ने उसे डरपोक बना डाला है। प्रत्येक असफलता और प्रायः सब दोषों के अन्त में किसी न किसी प्रकार का भय मिला रहता है। भय शंका का किला है। भय के कारण मस्तिष्क की कार्यवाहिनी शक्ति विकृत अथवा संकुचित हो जाती है। इससे केन्द्रित मंडल में उत्तेजना होती है और चक्कर आना, अपचन, मस्तिष्क पीड़ा, अस्थिरता, उत्पन्न होती हैं। जरा जरा सी प्रतिकूलता से वह उद्विग्न हो जाता है और उसके दिमाग में क्रोध, ईर्षा, चिंता, अशान्ति,

घबराहट, चंचलता, आशंका, अनिष्ट प्रस्फुटित होजाते हैं।

सनक (Eccentricity)—

सिड़ीपन, बौरहापन अव्यक्त के अशुद्ध संस्कारों के परिणाम स्वरूप अस्थिर चित्तवालों में उत्पन्न होता है। यह शैशवावस्था की दबाई गई प्रवृत्तियों का प्रकाशन है। आरम्भिक दमन क्रिया (Repression) से अज्ञात चेतना में कुछ भावना ग्रन्थियां बनती हैं और ये सुप्त मनोवृत्तियां समय समय पर उमड़ कर ऊपर जाग्रत चेतना की सतह पर पहुँचने की चेष्टा करती हैं, उन्हें गुप्तवेश धारण करना पड़ता है। सनक इन्हीं दलित भावनाओं का निदर्शन है। वास्तव में यह हमारी अज्ञात चेतना से उठे हुए मनोविकारों का समूह मात्र हैं।

कामातुरता (Sexual Obsession)—

कितने ही व्यक्तियों के मन में कामुकता के विकार बड़े तीव्र उठते हैं। वे क्षण भर में समस्त पवित्रता, ज्ञान, शिक्षा इत्यादि भूल जाते हैं और हृदय मलीन विचारों से आवृत्त हो जाता है। कामविकार एवं नैतिकता के भीतरी संघर्ष से मनुष्य छटपटाने लगता है। अन्तर्द्वन्द्व परोक्ष रूप में विभिन्न रूपों में प्रस्फुटित होता है और दैनिक कार्यों में अनेक विकृतियां उत्पन्न होती हैं। अतृप्त कामवासना ग्लानि, निराशा, हीनत्व की भावना, हिस्टीरिया, प्रमाद नपुंसकता, वैराग्य की व्याधियाँ सृजन करती है। विकारमय अनिष्ट विचार मानसिक दुर्बलता की वृद्धि करते हैं। भद्दे मजाक, गालियां, गुप्तांग का बारंबार स्पर्श करना, अश्लील व्यवहार, गंदी चेष्टाएँ, अति बनाव शृङ्गार, गाने गाना, स्वप्नदोष, बारबार मूत्र त्याग, मुहांसे, दुराचार, चित्त का अति चंचल रहना, क्षण क्षण अपने विचारों का परिवर्तन करना, दिमाग में गर्मी छा जाना, नेत्रों में जलन, क्षण भर में रुष्ट एवं क्षणभर में प्रसन्न हो जाना, माथे कमर तथा मेरुदंड में दर्द, दांत के मसूड़े फूलना, शरीर से बदबू निकलना, कँपकँपी आना, हाथ पैर में सनसनी दौड़ जाना, अज्ञात चेतना में छुपी हुई अतृप्त अशान्त कुचली हुई वासनाओं से उत्पन्न होते है।

परछिद्रान्वेषण तथा (Projection) **आरोप**—

अनेक व्यक्ति परदोषदर्शन, परनिंदा, बैर, ईर्षा की भट्टी में भस्मीभूत हुआ करते हैं। वे अपने मानसिक दोष दूसरों में परिलक्षित देखते हैं और उन दूसरों के कल्पित दोषों को अपनी कठिनता एवं असफलता का मूल कारण मानते हैं। यह स्वार्थ का नग्न स्वरूप हैं। इस मनोवृत्ति के कारण हम निरन्तर अपने दोष दूसरों पर आरोपित किया करते हैं। अनेक व्यक्ति अकारण ही द्वेषी होते हैं। योंही संत–साधु–शास्त्र इत्यादि का विरोध किया करते हैं। ईश्वर का खंडन करने वाले, दम्भी, अभिमानी, पर-निंदा-परायण, अन्यायकारी व्यक्ति एक भयंकर मानसिक व्याधि के शिकार हैं। उन्हें चहुँओर दोष, न्यूनता, कमी ही दृष्टिगोचर होती है। यह मनोवृत्ति स्वार्थपूर्ण ईर्षा की सन्तान है। तमोगुणी प्रधान व्यक्ति इससे परेशान रहते हैं।

विकृत मानसिक प्रवृत्ति (Obsessive neuroses)

यह मानसिक कष्ट मस्तिष्क के केन्द्रों में निर्बलता होने से उद्भूत होता है। रोगी का अन्तर्जगत अत्यन्त आवेग मय होता है किन्तु वह क्षोभ में निरन्तर जला करता है। जरा जरा सी बातों में शंका दुःख, संदेह उसके मानसिक केन्द्रों को घोर अंधकाराच्छादित बना कर उसे परेशान रखते हैं। अज्ञानावस्था में ही उसके मिथ्या डर, शोक, पीड़ा उत्थित होकर उसे अशान्त और विक्षुब्ध रखते हैं। चेतना में किसी विरोधी शंका के प्रविष्ट होते ही वह कुढ़ने लगता है और अस्त व्यस्त हो जाता है।

गुमसुम हो जाना (Apathy)—

भयंकर मानसिक आघात से यकायक मानसिक शून्यता उत्पन्न हो जाती है। रोगी का अन्तःकरण अकस्मात् अंधकारमय हो जाता है। चेतना, बुद्धि, विवेक, तर्क, प्रेरणा अपना कार्य कुछ देर के लिए बन्द कर देती हैं और वह किंकर्तव्य विमूढ़ सा होकर न बोलता है न क्रिया करता है, न उसे संसार में ही कुछ दीखता है। यद्यपि उसके नेत्र खुले रहते हैं किन्तु वह खोया खोया सा प्रतीत होता है—जैसे उसके मस्तिष्क के सूक्ष्म केन्द्रों को लकवा मार गया हो। कभी कभी ऐसे मानसिक आघातों से रोगी जीवन पर्य्यन्त शून्य मनस्क रह सकता है। इस विकृति में श्रवण, स्मरण एवं ग्रहण शक्ति का ह्रास हो जाता है।

मानसिक थकावट (Mental over-strain)-

अन्तर्द्वन्द्व, चिंता, उद्वेग, निरंतर एक ही प्रकार का मानसिक कार्य करते रहना, उसे बोझ समझ कर करते रहना, अस्त व्यस्त मानसिक अवस्था में पढ़ना लिखना, अधिक बोलना एकान्त स्थान में लगातार बैठ कर पढ़ते रहने से मानसिक थकावट उत्पन्न होती है। सर में दर्द, मन में निष्क्रियता, होने लगती है, किसी काम में जी नहीं लगता। रोगी जो कार्य हाथ में लेता है उसी से जी उचटता है। वह इधर उधर निष्प्रभ सा घूमता है। उसे ऐसा अनुभव होता है जैसा पर्वतों का बोझ उसके मन पर हो। जीवन के वे क्षण उसे बोझ स्वरूप प्रतीत होते हैं। कई दिन तक वह विक्षुब्ध, उद्विग्न एवं चिंतित सा दिखाई देता है।

भयंकर स्वप्न—

स्वप्न हमारी हार्दिक इच्छाओं, सूक्ष्म भावनाओं अनुभूतियों, अतृप्त अपूर्ण मनोवांछाओं, यातनाओं, शारीरिक कष्टों का क्रियाशील अस्तित्व है। हमारी दलित वासनाओं से इसका चिरस्थायी, अटूट तथा शाश्वत सम्बन्ध है। यह एक ऐसा दर्पण है जिसके विश्लेषण द्वारा हमें मनुष्य के मानसिक कष्टों का परिचय हो सकता है। जब मानव, दानवीय यातनाओं, शारीरिक कष्टों और सांसारिक चिंताओं से आवृत रहता है तो उसे बड़े बड़े भयंकर स्वप्न दीखते हैं, वह चिल्लाने की कोशिश करता है, घिग्घी बँध जाती है और उसे अत्यधिक मानसिक क्लेश होता है। दुश्चिंता, शारीरिक अपवित्रता, मद्यमांस तामसिक भोजन, अतृप्त कामेच्छा, कल्पित भय (Fear) भूत प्रेतों का डर, तंग कपड़े, मानसिक दुर्बलता, रौद्र स्वप्नों के प्रधान कारण हैं।

प्रमाद (Insanity)—

इस रोग में रोगी का मानसिक संतुलन (Mental Balance) विकृत हो जाता है। पागल यह नहीं समझता कि वह रोगी है। उसे यह अनुभव तक नहीं होता कि उसके मानसिक क्षेत्र में कुछ परिवर्तन हुआ है। प्रमाद अधिकतर किसी भयंकर आघात (Shock) जैसे किसी प्रियव्यक्ति की मृत्यु, व्यापार में भारी हानि, अत्यधिक भय, बुरा व्यवहार, अतृप्त कामेच्छा, प्रेम में सन्देह, पति के द्वारा अत्याचार-इत्यादि कारणों से होता है। अव्यक्त की क्रान्तिकारी वासनाएँ विद्रोही होकर अकस्मात् विद्रोही बन जाती हैं।

निद्रित अवस्था में चलना फिरना (Somnambulism)—रोगी निद्रावस्था में ही चलता फिरता, उठता बैठता, तथा अनेक आश्चर्यजनक कार्यों को सुचारु रूप से सम्पन्न करता है जिनके सम्बन्ध में कोई जानकारी उसे जाग्रत अवस्था में नहीं रहती। डा० मेचनिकाफ ने सैम्बुलिज्म के एक रोगी का वृतान्त लिखा है—"जो एक बार किसी अज्ञात आशंका से भयभीत होकर पनाले के पाइप को पकड़ता हुआ एक बहुत ऊँचे मकान की छत पर चढ़ गया तथा एक मुंडेर पर से दूसरे पर बन्दरों की तरह कूदता हुआ दूसरे मकान की

मुंडेर पर कूद गया। इसके अनन्तर जिस प्रकार ऊपर चढ़ा था, उसी प्रकार बन्दर की तरह बिना किसी खरोंच के नीचे उतर आया। न तनिक भी उसका पांव फिसला, न किसी प्रकार की चोट आई। इस उदाहरण से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि सोम्नेम्बुलिज्म की अवस्था में उस व्यक्ति की अज्ञात् चेतना में लाखों वर्षों से दबे हुए मनुष्य के वानर जातीय संस्कार जग पड़े थे।"

अनिद्रा या इन्सोमिनिया—

एडलर महाशय अनिद्रा को स्वयं तो रोग नहीं मानते किन्तु आने वाले किसी भयंकर मानसिक कष्ट की उपस्थिति का लक्षण मानते हैं। रोगी अत्यन्त चिंतित, विक्षुब्ध, एवं परेशान रहता है और बिस्तर पर पड़े पड़े निद्रा की प्रतीक्षा देखा करता है। प्रायः इनसौमिनिया का रोगी अपने आन्तरिक क्लेश इतने बढ़ा चढ़ा कर वर्णन करता है कि चिकित्सिक को संदेह हो जाता है कि कहीं वह केवल बहाना तो नहीं कर रहा। अत्याधिक चिंता, भय, उलझनें, कर्तव्य की जिम्मेदारी, आत्म सन्मान की रक्षा, मन पर अपनी प्रभुता जमाना, आत्म-हीनता की भावना ग्रन्थि, कमरे का दूषित वातावरण, उदर में गड़बड़ी, किसी अङ्ग में चोट, आंख दुखना, बुखार आना आदि सब कारण अनिद्रा की मानसिक व्याधि उत्पन्न करते हैं।

तुमही अपनी दृष्टि से सब वस्तुओं को चित्ताकर्षक बनाते हो। उन आंखों से जब तुम उनकी ओर देखते हो, तो तुमही स्वयं अपना तेज उस पदार्थ पर डाल देते हो।

× × ×

प्रत्येक व्यक्ति अपने विचारों के वायु मण्डल में ही निवास करता है और प्रत्येक की आत्म-सूचना का प्रभाव उस पर अप्रतिहत हुआ करता है।

× × ×

इष्ट आत्मद्योतन से शारीरिक रोग दूर होते हैं।

(डाक्टर दुर्गाशंकर जी नागर सम्पादक 'कल्पवृक्ष')

आत्मद्योतन से शारीरिक रोगों को मिटाने के लिये पुराने विचारों को सर्व प्रथम बदलना चाहिये। लोगों की यह मान्यता है कि हवा के फेरफार से रोग मिटते हैं। वायु परिवर्तन मात्र से रोग नहीं मिटते, किन्तु अन्य स्थान के सम्बन्ध से विचारों के बदलने से रोग दूर होते हैं। रोगी के मन में यह भावना प्रकट होती है कि मैं शुद्ध वायु के स्थान में जा रहा हूं जहां मुझे अवश्य लाभ होगा। इसे स्वैच्छिक आत्मद्योतन कहते हैं। इच्छापूर्वक, ज्ञानपूर्वक मन की जो बात सूचित की जाती है यह स्वैच्छिक आत्मद्योतन है।

स्थान परिवर्तन से नये विचार रोगी के मन में प्रथम प्रकट होते हैं। नवीन स्थान, नवीन दृश्य, नवीन लोक सभी नई नई वस्तुएँ दृष्टिगोचर होती हैं। इन सब नई बातों के नये आभास की गहरी छाप उसके हृदय पर अङ्कित होती है और रोगी के मन में यह भावना उदय होने लगती है कि रोग अब शीघ्र ही दूर हो जायगा।

इस प्रकार विचारों के बदलने से रोगमय स्थिति में परिवर्तन हो जाता है, क्योंकि स्थल के परिवर्तन से मन पर नूतन संस्कार पड़ते हैं और ये संस्कार विचारों को बदलते हैं और विचारों के परिवर्तन से सारे शरीर में परिवर्तन हो जाता है। नये विचारों से पुराने विचारों से प्रकट हुई रोग की दुःखद स्थिति नष्ट हो जाती है और रोगी निरोग हो जाता है।

नवीन स्थान में रोग को दूर करने का कोई नया चमत्कारिक तत्व नहीं होता। वही जल, वही पृथ्वी, वही वातावरण, वही सूर्य प्रकाश और

सभी कुदरती सामर्थ्य विद्यमान रहते हैं। यह अनुभव में आया है कि पहली बार जाने से वायु परिवर्तन के स्थान से जो लाभ होता है वह लाभ तीसरी या चौथी बार जाने से नहीं होता। चाहे आप रोगी को शिमला के शिखर पर या नीलगिरी की चोटी पर अत्यन्त शुद्ध वायु में ले जावें, उस पर एक रत्ती भर भी वहां की वायु का प्रभाव नहीं होता। किसी स्थान पर बार बार जाने से वहां नवीनता का भास नहीं होता और विचारों में परिवर्तन नहीं होता।

स्थान परिवर्तन से बहुतों की व्याधि दूर हो जाती है। आनन्दप्रद सिनेमा या नाटक देखने से, सुन्दर गायन के सुनने से कई रोगियों के रोग दूर होते देखे गये हैं। उसका भी कारण यही है कि पुराने विचारों को बाहर निकाल देने से और उनके स्थान में नवीन आनन्द के विचारों को मन पर अंकित करने से शरीर में विलक्षण फेरफार हो जाता है।

विचारों को बदलने के दो तरीके हैं—(१) बाह्य विषय के सम्बन्ध से अन्तःकरण में नवीन संस्कार पड़ते हैं। (२) दूसरा अन्तर में स्वेच्छा से आत्मद्योतन से अन्तःकरण में आभास प्रकट करके गहरे संस्कार अंकित किये जाते हैं।

हजारों मनुष्यों के विचारों में पहली रीति से परिवर्तन होता है किन्तु वह स्थायी नहीं होता।

विचारों के बदलने की सच्ची कला तो स्वैच्छिक आत्मद्योतन से अन्तःकरण में सुदृढ़ आभास की रचना करना है। यही विचार बदलने का सच्चा और सबल उपाय है। और इसीसे प्राप्त स्थिति में परिवर्तन होता है और रोगी अपने विचारों को बदलकर पुनः आरोग्य प्राप्त करता है।

इस संसार में प्राणिमात्र रोगों से दुःख का अनुभव करते हैं, किसी न किसी रूप में रोग से दुःखी न हो ऐसा मनुष्य कठिनता से ही मिलेगा। रोग को दूर करने के लिये दवाओं का सेवन किया जाता है। अनुकूल आहार और शुद्ध वायु सेवन किया जाता है। उपरोक्त सब साधन अच्छे हैं और उपयोगी भी हैं। अभी तक ऐसे ही साधनों से शुश्रूषा की जाती थी, परन्तु वर्तमान में इस विषय के विशेषज्ञ डाक्टरों ने ऐसी नई खोज की है कि रोग मुक्त होने में और स्वास्थ्य प्राप्त करने में सब साधनों से बढ़कर मन की स्वस्थ-शक्ति अत्यन्त आवश्यक है, क्योंकि मन का प्रभाव हमारे शरीर पर विशेष रूप से होता है। जब कि दूसरे मनुष्य उनके विचारों से अपने को रोग मुक्त करें उसके बजाय हम स्वयं अपनी भावनाओं से रोगमुक्त हो जायें तो यह विशेष उत्तम और स्वावलम्बन का मार्ग है। उपनिषद् इस भाव को दृढ़तापूर्वक बारम्बार प्रकट करते हैं कि मनुष्य यह विचार की ही कृति है। मनुष्य जैसा विचार करता है वैसा ही वह हो जाता है। अभी हमको अपने विचार बल का भान नहीं है, नहीं तो रोगों से मुक्त होने में मनुष्य के स्वयं विचार और भावनायें दूसरे सब साधनों से विशेष महत्व रखते हैं। हमें चाहिये कि प्रतिकूल आत्मद्योतन से शरीर के भिन्न भिन्न अवयवों पर जो भयंकर हानिकारक प्रभाव हुआ है उसे स्वैच्छिक आत्मद्योतन से दूर करके रोगों पर विजय प्राप्त करें।

रोगी मनुष्य को निम्न भावनाओं का दृढ़ता से मन्त्र के समान रात दिन चिंतन करना चाहिये। जहां तक कि रोग मिट न जाय वहाँ तक इस चिंतन को जारी रखना चाहिये। वह भावनारूपी मन्त्र स्वयं उसे रोग मुक्त कर सकता है परन्तु जहां तक इस भावनारूपी यन्त्र पर पूर्ण विश्वास प्रकट न हो वहां तक एक दूसरे प्रयोग करने में कोई हानि नहीं, परन्तु अन्य प्रयोग के साथ ही निम्न भावनाओं का चिंतन किये ही जाना चाहिये, जिससे कि विशेष सुगमता से रोगों को दूर किया जा सकता है और रोग द्रुतगति से मिटाये जा सकते हैं।

रोग दूर करने की उपयोगी भावनाऐं—

मुझे श्रद्धा है कि ये मेरी भावनायें मेरे मन और शरीर पर असर किये बिना नहीं रह सकतीं। मुझे प्रतिदिन दोनों समय यानी मध्याह्न और सायं-काल को बराबर भूख लगेगी, उस समय मेरे अन्दर भूख की रुचि अवश्य प्रकट होगी और उस समय अच्छी तरह तीव्र भूख लगेगी और मैं बड़े उत्साह और आनन्द से भोजन करूँगा। मेरे शरीर के पोषण के लिये जितना आहार आवश्यक होगा उसे बड़ी रुचि के साथ ग्रहण करूँगा।

मैं मेरे आहार को बड़ी शांतिपूर्वक दांतों से खूब चबा चबा कर मुख रस से पाचक करके स्वाभाविक रूप से कंठ के नीचे उतारूँगा।

जठराग्नि से मैं अपने जठर में गई हुई खुराक को बराबर पचाऊँगा जिससे मेरे पाचक यंत्र को और आंतों को कोई प्रकार की बाधा नहीं पहुँच सकती।

मेरी खाई हुई खुराक के योग्य रस से शुद्ध रक्त तैयार होगा और यह रक्त रक्तवाहिनियों के योग्य संचालन से ज्ञान तन्तुओं में शक्ति और स्फूर्ति का संचार करेगा जिससे शरीर में सर्वत्र शक्ति, सुव्यवस्था, उत्साह और जीवनीशक्ति का प्रभाव अवश्य प्रकट होगा।

खुराक बराबर पच जायगी और मेरी पाचकयंत्र की सब आंतें योग्य रीति से अपना काम करेंगी, जिससे प्रातःकाल में उठते ही मुझे शौच क्रिया करनी पड़ेगी और इसमें किसी प्रकार की बाधा नहीं आ सकती।

प्रातःकाल उठते ही मेरे शरीर में स्फूर्ति, उत्साह, चैतन्य और नूतन बल का तेजस्वी संस्कार प्रतीत होगा जिससे मैं अपने कर्तव्य पालन में पूर्ण शक्ति का अनुभव कर सकूंगा।

मेरे शरीर के सब अवयव अपना कार्य योग्य रूप से कर रहे हैं। मेरी नाड़ियां और नसें बराबर सुचारु रूप से गति कर रही हैं। रक्त ठीक तरह से सब रक्तवाहिनियों में प्रवाहित होकर शरीर का ठीक ठीक पोषण और रक्षण कर रहा है। मेरे फेंफड़े अपना कार्य सुचारु रूप से कर रहे हैं। पेट, आंतड़ियां, कलेजा, पित्ताशय, मूत्राशय आदि सब अवयव अपना अपना काम ठीक ठीक रीति से कर रहे हैं। अगर कोई अवयव अपना कार्य अच्छी तरह नहीं करता हो तो मेरी इस भावना की प्रबल शक्ति से उसकी बाधा दिन प्रतिदिन दूर होती जायगी और थोड़े समय में यह बाधा सर्वथा दूर हो जायगी कि जिससे यह अवयव अपना काम यथार्थ रूप से करने लगेगा।

मुझ में मेरे स्वयं के बल के विषय में जो अश्रद्धा थी वह अब दूर होती जा रही है और उसकी जगह मुझे अपने बल में श्रद्धा प्राप्त होती जाती है। मुझे अपने आत्मबल में विश्वास पैदा होता जा रहा है, जिससे मेरी बुद्धि के अनुकूल सुरुचिपूर्ण उपयोगी कार्यों के लिये आवश्यकीय बल मुझमें अवश्य निश्चित रूप से प्रकट होगा।

कायरता एक प्रकार की मानसिक दुर्बलता है, मनुष्य का जन्मजात गुण नहीं। वह एक प्रकार की अहितकर आदत है जो दूसरी आदतों के समान अभ्यास से उत्पन्न होती है।

× × ×

आपकी आत्मा स्वभाव से ही अशुद्ध और पापी नहीं है, और न किसी एक व्यक्ति के पाप से पतित हुई है और न अपने उद्धार के लिए वह किसी दूसरे मनुष्य के पुण्य के आश्रय ही है।

× × ×

वासना, पागलपन और आत्म हत्या।

(श्री डाक्टर विश्वामित्र वर्मा, मानसचिकित्सक)

सारा विश्व परमाणुओं का बना हुआ है। परमाणु अति सूक्ष्म और अदृश्य होते हैं, इनमें बड़ी तीव्रगति होती है, आकर्षण होता है और बहुत प्रकार के गुण वाले हैं, इसी कारण भिन्न भिन्न परमाणुओं के मेल से भिन्न भिन्न रंग रूप स्वभाव के प्राणी संसार में हैं। एक छोटा सा बीज पृथ्वी पर पड़ जाने से समयानुसार पृथ्वी, जल, वायु और आकाश के अदृश्य तत्वों के संयोग से ही विशाल काय वटवृक्ष हो जाता है।

उसी प्रकार यह मानव शरीर भी बना है और जिन तत्वों के परमाणुओं से इसका पोषण होता है उन्हीं का रंग रूप गुण स्वभाव इसमें होता है। मनुष्य जैसा भोजन करता है उसी के गुणों के अनुसार उसकी प्रकृति, विचार और रंग रूप होते हैं। भूख लगने पर भोजन करने से भूख शांत होती है, पच जाने पर उपयोग न किया हुआ शरीर में रहा हुआ भोजन का वह रूप बाहर निकालने की आवश्यकता होती है, मल त्याग करने पर शांति मिलती है। प्यास लगने पर पानी पीने से, तथा मूत्र त्याग करने से शांति मिलती है। इसी प्रकार शरीर से अन्य स्वाभाविक क्रियाएँ अङ्ग संचालन-नींद, छींक, जँभाई, हँसना, रोना, तथा और भी शरीर की आवश्यक स्वाभाविक क्रियाएँ हैं। इन क्रियाओं में न्यूनता, अधिकता होने अथवा इनके बन्द होने अथवा इनको रोकने, दबाने से रोग और मृत्यु हो जाती है। इन्हें हम शारीरिक वासनाएँ कहेंगे, वासना से हमारा अर्थ है लगाव। शरीर के साथ ये क्रियाएँ लगी हुई हैं।

इसी प्रकार मन की लगी हुई क्रियाएँ हैं, प्रेम करना, मनोविनोद आशा, आकांक्षा, सौंदर्य दर्शन, संगीत कला रुचि आदि कर्मेन्द्रियों और ज्ञानेन्द्रियों के स्वाभाविक कर्म हैं। आगे चल कर और भी सूक्ष्म वासनाएं शरीर और मन के परे हैं जिनके पूर्ण होने अथवा न होने से शरीर, मन तथा जीवात्मा पर अच्छा या बुरा प्रभाव पड़ता है। शरीर की अवस्थाएँ बढ़ने के साथ साथ में वासनाएं रूप बदलती रहती हैं। यथा बचपन में खेल कूद, युवावस्था में उच्छृंखलता उद्दण्डता, पुरुष-स्त्री प्रेम, कामेच्छा, (स्त्रियों से ऋतुधर्म) प्रौढ़ावस्था में संतानेच्छा, सन्तानोत्पत्ति, माता-पिता बनने की इच्छा, संपत्ति संचय, सामाजिक व्यवहार व सम्बन्ध, गंभीरता, तथा वृद्धावस्था में झंझटों से त्याग आत्म चिंतन, ईश्वर भजन।

यदि इन अवस्थाओं में तत्संबंधी स्वाभाविक क्रम न पूर्ण हुए, अथवा किसी कारणवश स्वयं उन्हें रोका गया, दबाया गया तो आगे चल कर इसका भयानक परिणाम होता है, यथा-रोग, पागलपन, आत्महत्या, तथा मृत्यु के पश्चात भी जीवात्मा, अपूर्ण जीवन व्यतीत होने के कारण पार्थिव वासनाओं में सैकड़ों वर्ष तक लिप्त हो दुःखी रहती है और सारा उन्नति का पारलौकिक क्रम बिगड़ जाता है। हिन्दुओं में आश्रम धर्म का बराबर पालन हो तो आत्मा की इहलौकिक तथा पारलौकिक यात्रा पूर्ण सफल हो। परन्तु आधुनिक युग में विचार स्वातंत्र्य, सिद्धान्त, आदर्श तथा बचपन में ही धार्मिक-सामाजिक किन्हीं उच्च काल्पनिक संस्कारों के जम जाने से अल्पावस्था से ही-राष्ट्र सेवा, समाज सेवा करने, ब्रह्मचारी, सन्यासी, त्यागी बन कर आदर्श के द्वारा जो पहले से ही, सांसारिक व्यवहार में प्रवेश किये बिना, जीवन क्रम की अवहेलना करके शीघ्र ही एक दम उछल कर चौथी सीढ़ी पर छलांग मारकर देवत्व प्राप्त करना चाहते हैं उनमें आगे चल कर पिछली अवस्था की बिछुड़ी हुई वासनाएँ विकृत मार्ग से

विकृत रूप में प्रगट होती हैं। इससे शरीर और मन की स्वाभाविक क्रियाएं बिगड़ जाती हैं।

पृथ्वी पर एक बीज बो देने पर अंकुर निकल कर जब वह पृथ्वी की सतह पर प्रगट होकर पौधा बनना चाहता है उस समय यदि उस पर चट्टान रख दी जाय, तो वह विकृत मार्गी होकर स्वयं को दर्शावेगा और उसका रूप तथा फल भी कमजोर होगा।

सिद्धान्त और आदर्श के कारण, अथवा बचपन से जमे हुए संस्कारों के कारण जब स्वाभाविक क्रम वासनाएं पूर्ण नहीं होतीं, तो मन और शरीर में संघर्ष होता है और वासनाएं प्रगट होने के लिए अन्दर ही अन्दर घुटती छटपटाती तथा उसी प्रकार मार्ग ढूंढती है जिस प्रकार पृथ्वीकी सतह पर चट्टान आ जाने से बीज का अंकुर मार्ग ढूंढता है। मन और शरीर की ऐसी अवस्था पागलपन होती है। पागलपन कभी प्रगट होकर जीवन और व्यवहारों में गड़बड़ी करता है अथवा कभी स्वयं व्यक्ति के शारीरिक और मानसिक अवस्था में अन्दर ही गड़बड़ी करता रहता है, जिससे उसके बाहर के व्यवहार ठीक रहते हैं लोग उसे पागल नहीं कहते परन्तु वह स्वयं छिन्न भिन्न रहता है। धार्मिक सामाजिक बन्धनों के कारण, किसी व्यक्तिगत लाचारी, अथवा किसी अन्य दबाव के कारण जब वह अपने स्वाभाविक क्रम के अनुकूल जीवन बनाने में स्वयं को असमर्थ पाता है और आंतरिक यातनाओं को सहन करते करते थक जाता है तब आत्म हत्या कर लेता है।

जीते जी ऐसे व्यक्तियों का आंतरिक जीवन बड़ा अशान्त होता है, हम कल्पना कर सकते हैं कि जब भूख लगती है और भोजन न दिया जाय टट्टी लगने पर उसे रोका जाय पेशाब लगने पर उसे रोका जाय, जँभाई अथवा छींक आने पर उसे रोका जाय, नींद आने पर सोने न दिया जाय, कामेच्छा होने पर उसे किसी कारण पूर्ण न किया जाय, स्त्री का ऋतु धर्म न हो, प्रसव रुक जाय, तो कितना कष्ट होता है। इनका केवल रुकना ही नहीं, वरन् न्यून अथवा अधिक होने पर मनुष्य रोगी होता है और मृत्यु हो जाती है।

विशेष कर कामेच्छा, पुरुष स्त्री प्रेम, संतानेच्छा, संतान प्रेम, ऐसी वासनाएँ हैं जिनका पूर्ण होना बहुत ही आवश्यक है—इनके पूर्ण न होने से अनेक रोग शरीर और मन को होते हैं तथा मरने के बाद जीवात्मा असन्तुष्ट रहता है। इनकी अपूर्णताओं से मन में तथा मन से शरीर में ऐसे रोग हो जाते हैं कि परीक्षा व निदान करने पर कारणों का कुछ पता नहीं चलता, न इनका इलाज हो सकता, क्यों कि उनका शारीरिक—स्थूल—कारण न होकर, उनकी जड़ सूक्ष्म में रहती है। एक स्त्री को दो वर्ष से ऋतु धर्म न हुआ था फलतः आँखें होते हुए भी उसे कुछ दिखाई न देता था, यद्यपि आंखों में कोई खराबी न सिद्ध हुई, वह अंधी थी।

स्वाभाविक कर्मों का दमन करके, यद्यपि व्यक्तिगत जीवन आश्रम धर्म के अनुकूल न हो तो भी आजकल लोग कामेच्छा को भले ही किसी अप्राकृतिक अथवा स्वाभाविक साधन से अस्थायी रूप में पूर्ण कर लें, मन बहलाव करलें—उसका सूक्ष्म प्रभाव नहीं जाता। यथा युवावस्था में विवाह न कर, अविवाहित स्त्री पुरुष यद्यपि स्वतंत्रता के मद में, गृहस्थ की झंझटों और कष्ट से बचने के लिये प्रेमालाप, विषय भोग करते रहें, संतति निरोध एक ऐसा रोग है जिसका परिणाम स्त्रियों पर भयानक होता है क्यों कि "गर्भाशय की भूख" गर्भधारण और संतानोत्पत्ति से ही शांति होती है और उसकी जीवात्मा को शांति मिलती है।

संतानोत्पत्ति न होने से बहुत सी स्त्रियों में पागलपन भयानक रूप धारण कर लेता है, उनकी कामेच्छा बहुत बढ़ जाती है और किसी प्रकार भी शांत नहीं होती। संतान प्रेम की अनुपस्थिति उन्हें

बहुत दुःखी करती है, मरने पर उनकी जीवात्मा दूसरी गर्भवती तथा गोदभरी स्त्रियों व उनकी संतानों पर बुरा या अच्छा प्रभाव डालती है।

आधुनिक वैज्ञानिक सभ्यता के युग में स्वतंत्र, आदर्श जीवन की आढ़ में आश्रम धर्म की अवहेलना से ही वासनाओं का दमन, आंतरिक संघर्ष, पागलपन और आत्महत्या अधिक होती हैं। विवाहितों की अपेक्षा अविवाहितों और एकाकी जीवन व्यतीत करने वालों का जीवन क्रम प्रायः नीरस होने के कारण उनमें मानसिक संघर्ष पागलपन और आत्म हत्या की प्रेरणा अधिक होती है, तथा व्यापारिक हानि, गृह कलह, द्वेष तथा अन्य कारणों की अपेक्षा, वासनाओं के कारण आत्म हत्याएं अधिक होती हैं। विवाहितों को गृहस्थ जीवन यद्यपि झंझटमय होता है, वे बालबच्चों में तथा पारस्परिक सहयोग से जीवन के दुःखों को भूले हुए अधिक काल तक जीते हैं, एकाकी लोग जीवन से घबरा उठते हैं, क्यों कि उनकी आकांक्षा, व्यवहार और सहयोग का आधार नहीं है।

मोरसली नामक एक पाश्चात्य डाक्टर ने खोजकर बताया है कि अविवाहितों और विधुर-विधवाओं की अवस्था ज्यों ज्यों बढ़ती जाती है त्यों-त्यों, विवाहितों की अपेक्षा उनमें पागलपन और आत्महत्या की प्रेरणा अधिकाधिक बढ़ती जाती है। उन्होंने बताया है कि प्रति दस लाख की जनसंख्या में बालबच्चे वाले २०५ आदमियों ने आत्महत्या की, ४५० निःसंतान मनुष्यों ने, बालबच्चे वाले ५२६ विधुरों ने, १००४ निसन्तान विधुरों ने, सन्तानवाली ४५ स्त्रियों ने, निःसन्तान १५- स्त्रियों ने, सन्तान वाली १०४ विधवाओं में, निःसन्तान २३८ विधवाओं ने आत्महत्या की संपूर्ण संख्या का ७५ प्रतिशत अविवाहितों की आत्महत्या है।

स्त्रियों के विषय में वे कहते हैं कि यूरुप में पागल स्त्रियों की गणना में, ५ पागल स्त्रियों में ४ पागल स्त्रियां अविवाहित मिलेंगी अर्थात् सारे सभ्य संसार में विवाहित पागल स्त्रियों की अपेक्षा अविवाहित पागल स्त्रियां तिगुनी चौगुनी हैं। फ्रांस में १८५३ ई० में मरने वालों की गिनती की गई तो मालूम हुआ कि विवाहितों की अपेक्षा अविवाहितों की २० से ८० वर्ष तक अवस्था वालों से मरने वालों की संख्या बहुत अधिक थी, यथा प्रति हजार की २० से ३० वर्ष वाले अविवाहित मनुष्यों में मृत्यु क्रम ११ था, विवाहितों में प्रतिहजार केवल ६ मरते थे, स्काटलेंड में २० से ३० वर्ष अवस्था वाले, प्रति हजार अविवाहितों में १५ मरते थे, विवाहित प्रति हजार केवल ७ मरते थे। उनका कहना है कि जीवन को नष्टकारी शक्तियों में कुँआरापन सबसे भयानक है। भोजन व रहन सहन के तरीकों में गन्दगी, बीमारी आदि को अपेक्षा मृत्यु की अपेक्षा कुँआरेपन का मृत्यु अधिक होती है।

स्वाभाविक जीवन क्रम को रोकने या दबाने का यह दुष्परिणाम होता है। धार्मिक रूढ़ियों में मन की चंचलता और शरीर को उद्दण्डता को वासना और पाप बताया जाकर उसका निरोध और दमन करके दीर्घ जीवन मोक्ष और परमात्म प्राप्ति करना बताया है, इसी लिये लौकिक सुख की अवहेलना करके पारलौकिक स्वर्ग सुख के लालच से हिन्दू संस्कृति (?) में विभिन्न सम्प्रदाय के अल्पवयस्क ब्रह्मचारी, सन्यासी, साधु. महात्मा, नागा आदि नजर आते हैं जो मनोविरोध, इन्द्रिय दमन और 'काम' को मारने के हेतु संसार त्याग देते है, भग गांजा चरस पीते, जोर से कीर्तन भजन, घण्टों पूजा पाठ करते हैं, अन्तर्द्वन्द्व करते हुए वे अनेक प्रकार के प्रतिबिम्बों से जीवन का बहलाव कर, स्वाभाविकता को दबाते, मारते, मनुष्यत्व लाभ किये बिना देवता नहीं बन सकते।

यह विचारधारा प्रायः सभी धर्मों में इतनी जड़ जमा चुकी है कि नारी और प्रेम को बहुत

बदनाम कर रखा है एक ओर नारी को लक्ष्मी और माता, प्रकृति मानकर फिर उसे नागिन कल्याण मार्ग में बड़ी बाधा मानी है, प्रेम एक ओर ईश्वर है, दूसरी ओर पाप। भारतवर्ष में विधवाओं पर तो, विभिन्न वासनाओं से ठुकराकर, मनोवैज्ञानिक प्रभाव की अवहेलना कर. धर्म ने कुठाराघात किया है। एक आदमी ने तो अपनी मां से घृणा करते हुए, धर्म ग्रन्थों के प्रभाव में आकर यहां तक कह डाला कि तूने पाप कर के मुझे जन्म दिया है। इस आधार पर किन्हीं धार्मिक संस्थाओं में जन सेवा और मोक्ष प्राप्ति तथा पवित्र जीवन बनाने के हेतु कुंआरा रहना बिलकुल ही अनिवार्य है। हमें ऐसे धर्मों पर आश्चर्य होता है कि वे व्यक्ति को भूख लगने पर भोजन करने, शौच के लिये मल मूत्र त्याग करने, परिश्रम के पश्चात् नींद पूरी करने, हँसने रोने की अनुमति तो देते हैं परन्तु सूक्ष्म भूख, वासनाओं की आवश्यक पूर्ति पर कुल्हाड़ा चला कर लोक परलोक दोनों का कल्याण मार्ग अवरुद्ध कर देते हैं। सामाजिक और धार्मिक परम्परा की बहुत सी व्यावहारिक बातों पर ध्यान देने से यही मालूम होता है कि सभ्यता का निर्माण स्वाभाविकता को दबाकर किया गया है, मनोविज्ञान और धार्मिक सामाजिक रीति रिवाजों में सामंजस्य नहीं है और सभ्यता एक ऐसा आडंबर और पाखण्ड है जिसकी कतिपय बातों में मनोवैज्ञानिक आधार नहीं है, जो कुछ मानते हैं वह लकीर की फकीरी है।

सभ्यता और स्वाभाविकता की खींचा तानी में किसका पक्ष सुखकर है इसका अनुभव संयम पूर्वक जीवन बिता कर आप स्वयं करें।

व्यक्त एवं अव्यक्त मन का द्वन्द ही दुःख अथवा रोग है। उसकी एकता का नाम ही सुख या आनन्द है।

पाठकों को कुछ आवश्यक सूचनाएं।

अङ्क न मिलने पर डाकखाने से पूछिए—

यहां से दो बार भली प्रकार जांच कर हर महीने अखंडज्योति सब ग्राहकों के पास भेजी जाती है। फिर भी रास्ते में डाक की गड़बड़ी से कुछ अङ्क हर महीने गुम हो जाते हैं। जिनके अंक न पहुँचें, उन्हें अपने पोष्ट आफिस से पूछना चाहिए और वहां के उत्तर समेत हमें लिखना चाहिए। जिन्हें अंक नहीं मिलते हैं, उनके लिए दुबारा भेज दिये जाते हैं।

पूरे वर्ष का हिसाब रखिए—

जिन सज्जनों का चन्दा वर्ष के बीच में किसी महीने में समाप्त होता है, उनसे प्रार्थना है कि शेष महीनों का चन्दा ≈)।।। प्रति अंक के हिसाब से भेजने की कृपा करें। अधूरे वर्ष से हिसाब रखने में हमें भी और पाठकों को भी बहुत असुविधा होती है। अखण्डज्योति का वर्ष जनवरी से आरम्भ होता है।

भ्रम निवारण—

ऐसा मालूम हुआ है कि कुछ लोगों को यह भ्रम हुआ है कि विशाल भारत के यशस्वी सम्पादक और सुप्रसिद्ध साहित्यकार पं० श्रीराम शर्मा तथा अखण्डज्योति के सम्पादक पं० श्रीराम शर्मा आचार्य एक ही व्यक्ति हैं। जिनकी यह धारणा है वे गलती पर हैं। उपरोक्त दोनों व्यक्ति सर्वथा भिन्न हैं।

पता साफ और पूरा लिखिए—

पत्र व्यवहार करते समय अपना ग्राहक नम्बर एवं पूरा पता अवश्य लिखना चाहिए। पते में साफ और सुन्दर अक्षरों का प्रयोग करना चाहिए। अधूरे एवं अस्पष्ट पते पर उत्तर पहुंचना कठिन है।

—मैनेजर "अखण्डज्योति" मथुरा।